साप्ताहिक
Live not just breaTHE

MPHIN/2015/63220
MP/IDC1528/16-18

दि कार्मिक पोस्ट

Global School Of Excellence, Obedullaganj

वर्ष : 7, अंक : 25 (प्रति बुधवार), इन्दौर 9 फरवरी 2022 से 15 फरवरी 2022 पेज : 8 कीमत : 3 रुपये

हिमालय में पिछले अनुमान से अधिक मिली बर्फ, पर पिघलने की रफ्तार भी बढ़ी

पिछले अनुमानों की तुलना में हिमालय के पहाड़ों पर करीब 37 फीसदी अधिक बर्फ पाई गई है, जोकि जल संसाधन के दृष्टिकोण से एक अच्छी खबर है। अनुमान है कि इसके चलते हिमालय के जल संसाधन में एक तिहाई वृद्धि हो सकती है। हालांकि साथ ही शोध में यह भी जानकारी दी गई है कि जलवायु परिवर्तन के चलते इस क्षेत्र में बर्फ कहीं ज्यादा तेजी से पिघल रही है। यह जानकारी इंस्टिट्यूट ऑफ एनवायर्नमेंटल जियोसाइंसेज और डार्टमाउथ कॉलेज के शोधकर्ताओं द्वारा किए अध्ययन में सामने आई है, जोकि जर्नल नेचर जियोसाइंस में प्रकाशित हुआ है।

शोधकर्ताओं के मुताबिक यह हिमनदों की गति और मोटाई को मापने वाला पहला एटलस है, जिसमें दुनिया भर में बर्फ और जल संसाधनों की एक स्पष्ट लेकिन मिश्रित तस्वीर प्रस्तुत की है। अध्ययन के मुताबिक जहां हिमालय के हिमनदों में अनुमान से ज्यादा बर्फ है, वहीं दूसरी तरफ एंडीज के पहाड़ों पर पिछले अनुमानों से लगभग एक चौथाई कम बर्फ है।

यदि वैश्विक स्तर पर देखें तो दुनिया भर के हिमनदों में पिछले अनुमानों की तुलना में करीब 20 फीसदी कम बर्फ है जोकि दुनिया भर में पीने के पानी, बिजली उत्पादन, कृषि और अन्य उपयोगों के लिए जल उपलब्धता पर असर डाल सकती है। इतना ही नहीं, जलवायु परिवर्तन के चलते समुद्र के जलस्तर में वृद्धि का जो अनुमान लगाया है यह निष्कर्ष उसको भी प्रभावित कर सकते हैं। दुनिया भर में हिमनदों की स्थिति को समझने के लिए इस अध्ययन में 250,000 से अधिक पर्वतीय हिमनदों (ग्लेशियर) का सर्वेक्षण किया गया है, जिसमें इन हिमनदों के वेग और गहराई को मापा है। शोधकर्ताओं के मुताबिक इस एटलस में दुनिया के करीब 98 फीसदी हिमनदों को शामिल किया गया है। बड़े पैमाने पर बर्फ के प्रवाह के इस डेटाबेस को तैयार करने के लिए वैज्ञानिकों ने दुनिया भर के हिमनदों की उपग्रह से प्राप्त 800,000 से अधिक छवियों का अध्ययन किया है। उच्च रिज़ॉल्यूशन वाली यह तस्वीरें 2017-18 के बीच नासा के लैंडसैट -8 और यूरोपीय अंतरिक्ष एजेंसी के सेंटिनल - 1 और सेंटिनल -2 उपग्रहों द्वारा ली गई थी। इतना ही नहीं आईजीई ने 10 लाख घंटों से अधिक समय तक इन आंकड़ों का विश्लेषण किया गया है। आईजीई और इस शोध से जुड़े प्रमुख शोधकर्ता रोमेन मिलन का इस बारे में कहना है कि ग्लेशियरों में कितनी बर्फ जमा है, यह समाज पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का अनुमान लगाने के लिए एक महत्वपूर्ण कदम है। इस जानकारी के साथ हम जान पाएंगे कि दुनिया के सबसे बड़े ग्लेशियरों में कितना जल उपलब्ध है, साथ ही इस पर भी विचार कर सकते हैं कि यदि ग्लेशियरों की मात्रा कम है तो उसका कैसे सामना किया जाए। शोध से पता चला है कि दक्षिण अमेरिका के उष्णकटिबंधीय एंडीज पहाड़ों में अनुमान से लगभग एक चौथाई कम ग्लेशियर हैं। इसका मतलब है कि उस क्षेत्र में मीठे पानी की उपलब्धता अनुमान से 23 फीसदी कम है। गौरतलब है कि मीठे पानी के इन स्रोतों पर लाखों लोग निर्भर हैं। यदि देखा जाए तो पानी की यह कैलिफोर्निया की तीसरी सबसे बड़ी झील मोनो झल के पूरी तरह सूख जाने के बराबर है।

जलवायु परिवर्तन के चलते कहीं ज्यादा तेजी से पिघल रहे हैं ग्लेशियर- यदि जलवायु परिवर्तन की बात करें तो वो इन ग्लेशियरों के लिए एक बड़ा खतरा है। जैसे-जैसे वैश्विक तापमान में वृद्धि हो रही है यह ग्लेशियर पहले की तुलना में कहीं ज्यादा तेजी से पिघल रहे हैं। इससे पहले जर्नल साइंटिफिक रिपोर्टस में प्रकाशित एक शोध से पता चला है कि हिमालय के ग्लेशियर पहले के मुकाबले 10 गुना ज्यादा तेजी से पिघल रहे हैं। इसके चलते भारत सहित एशिया के कई देशों में जल संकट और गहरा सकता है। गौरतलब है कि अंटार्कटिका और आर्कटिक के बाद हिमालय के ग्लेशियरों में सबसे ज्यादा बर्फ जमा है। यही वजह है कि इसे अक्सर दुनिया का तीसरा ध्रुव भी कहा जाता है। शोधकर्ताओं के अनुसार बढ़ते तापमान के कारण ग्लेशियरों से पिघलती बर्फ समुद्र के बढ़ते स्तर के लिए प्रमुख रूप से जिम्मेवार है। अनुमान है कि यह ग्लेशियर समुद्र के जलस्तर में होने वाली कुल वृद्धि के 25 से 30 फीसदी हिस्से के लिए जिम्मेवार है। दुनिया की लगभग 10 फीसदी आबादी समुद्र तल से 30 फीट नीचे रह रही है, जो समुद्र के बढ़ते जल स्तर के कारण खतरे में है। शोधकर्ताओं के मुताबिक ग्लेशियर में 20 फीसदी की कमी का जो अनुमान लगाया गया है, उसके चलते समुद्र के स्तर में होती वृद्धि में ग्लेशियरों के योगदान की सम्भावना 3 इंच कम हो जाती है। हालांकि शोधकर्ताओं के मुताबिक इसमें ग्रीनलैंड और अंटार्कटिका में जमा बर्फ के पिघलने से समुद्र के जलस्तर में होती वृद्धि को शामिल नहीं किया है। वहीं जर्नल द क्रायोस्फीयर में प्रकाशित एक अन्य शोध के हवाले से पता चला है कि दुनिया भर में जमा बर्फ के पिघलने की रफ्तार तापमान बढ़ने के साथ बढ़ती जा रही है। अनुमान है कि 1990 की तुलना में 2017 के दौरान ग्लेशियरों और अन्य जगहों पर जमा यह बर्फ 65 फीसदी ज्यादा तेजी से पिघल रही थी। इतना ही नहीं, पता चला है कि 1994 से 2017 के बीच 28 लाख करोड़ टन बर्फ पिघल चुकी है। मिलन के अनुसार नए और पिछले अनुमानों के बीच जो अंतर देखा गया है वो तस्वीर का सिर्फ एक पहलु है। नए और पिछले अनुमानों के बीच जो अंतर देखा गया है वो तस्वीर का सिर्फ एक पहलु है। उनके अनुसार यदि स्थानीय रूप से देखना शुरू करते है तो यह परिवर्तन और भी बड़े हो सकते हैं। ऐसे में इसकी सही मात्रा के निर्धारण के लिए जानकारियों को बारीकी से इकट्ठा करना कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है। शोध के मुताबिक इससे पहले जो अध्ययन किए गए थे उनमें केवल एक फीसदी ग्लेशियरों की ही मोटाई की माप उपलब्ध थी। इनमें से केवल अधिकांश ग्लेशियरों का केवल आंशिक रूप से ही अध्ययन किया गया था। ग्लेशियरों में जमा बर्फ के जो पिछले अनुमान थे, वो लगभग पूरी तरह अनिश्चित थे। यह अनिश्चितता मुख्य रूप से मोटी और पतली बर्फ के प्रवाह की माप के कारण हैं जो अप्रत्यक्ष तकनीकों के माध्यम से एकत्र की जाती है। शोधकर्ताओं के अनुसार हम आमतौर पर ग्लेशियरों को ठोस बर्फ के रूप में सोचते हैं, जो गर्मियों में पिघल सकते हैं। लेकिन वास्तव में यह बर्फ अंदर-अंदर मोटे सिरप की तरह बहती है। आमतौर पर बर्फ ऊंचे क्षेत्रों से कम ऊंचाई वाले क्षेत्रों की ओर बहते हैं, जहां यह अंततः पानी में बदल जाती है। उनके अनुसार उपग्रहों से प्राप्त तस्वीरों की मदद से हम इन ग्लेशियरों की गति को ट्रैक करने में सक्षम हैं। दुनिया के ग्लेशियरों की मोटाई कितनी है उसके बारे में अभी भी पूरी जानकारी उपलब्ध नहीं है। मिलन ने बताया कि हमारे जो अनुमान है वो अभी भी पूरी तरह सटीक नहीं हैं। खासकर हिमालय जैसे उन क्षेत्रों में जहां बहुत से लोग इन ग्लेशियरों पर निर्भर हैं। वहां इनकी माप एकत्र करना और उसे साझा करना जटिल हैं। ऐसे में क्षेत्रों की प्रत्यक्ष माप के बिना ग्लेशियरों में मौजूद मीठे पानी का सटीक अनुमान मुमकिन नहीं है।

साभार - डाउन टू अर्थ

जंगली जीवों से फैलने वाली बीमारियों से हर साल मर रहे हैं 33 लाख लोग, ऐसे हो सकता है बचाव

मुंबई। दुनिया भर में जूनोटिक बीमारियां जैसे एड्स, इबोला, जीका और कोविड-19 हर साल करीब 33 लाख लोगों की जान ले रही हैं। ये वो बीमारियां हैं जो जंगली जीवों से इंसानों में फैल रही हैं। यदि देखा जाए तो इन बीमारियों के फैलने के लिए कहीं हद तक हम इंसान ही जिम्मेवार हैं। जो इन जीवों के प्राकृतिक आवासों को नष्ट करके उन्हें इंसानों में फैलने के लिए मजबूर कर रहे हैं।

इस पर हाल ही में किए एक शोध से पता चला है कि इन जूनोटिक बीमारियों को रोकने की लागत उन्हें नियंत्रित करने की तुलना में बहुत कम है। ऐसे में यह महत्वपूर्ण है कि इन बीमारियों को फैलने से पहले ही रोक दिया जाए। देखा जाए तो बचाव किसी भी बीमारी की सबसे अच्छी दवा है। अपने इस शोध में वैज्ञानिकों ने इस सदी में इंसानों पर कहर ढा चुकी सभी प्रमुख जूनोटिक बीमारियों का लेखा जोखा भी तैयार किया है। अनुमान है कि यह बीमारियां पिछले करीब 100 वर्षों में करीब 7 करोड़ लोगों की जान ले चुकी हैं। इनमें स्पैनिश इन्फ्लुएंजा जैसी बीमारियां प्रमुख हैं। इस बीमारी के चलते 1918 में 5 करोड़ से ज्यादा लोगों की जान गई थी। इसी तरह एच2एन2 इन्फ्लुएंजा 11 लाख, लासा बुखार 2.5 लाख, एड्स 1.07 करोड़, एच1एन1 2.8 लाख और कोरोनावायरस 40 लाख से ज्यादा लोगों की जान अब तक ले चुका है। जानवरों और पक्षियों से इंसानों में फैलने वाली बीमारियों को वैज्ञानिक रूप से जूनोसिस या फिर जूनोटिक डिजीज कहते हैं। आमतौर पर यह बीमारियां तब फैलती हैं जब कोई वायरस अपने मेजबान होस्ट से अलग एक नया होस्ट खोजने में सक्षम हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई जानवर किसी खास वायरस से ग्रस्त है और वो किसी प्रकार इंसानों या अन्य जानवरों के संपर्क में आता है तो वो उसे भी संक्रमित कर देता है। इस तरह यह बीमारियां पूरे समाज में फैलना शुरू कर देती हैं। इस तरह का प्रसार तब ज्यादा होता है जब यह वायरस इंसान जैसे होस्ट के संपर्क में आता है या फिर उसमें म्यूटेशन होने लगते हैं। देखा जाए तो इंसान और जानवरों के बीच भौतिक नजदीकी इस वायरस को इंसानों में फैलने के लिए आदर्श परिस्थितियां बनाती है। वैज्ञानिकों की मानें तो जिस तरह से इंसान और प्रकृति के बीच का संतुलन बिगड़ रहा है और वो अपनी बढ़ती लालसा की पूर्ति के लिए प्रकृति पर हावी होता जा रहा है, वो इस तरह की बीमारियों के खतरे को और बढ़ा रहा है। कृषि और शहरों के लिए तेजी से जंगलों को काटा जा रहा है साथ ही जंगली जीवों को भी आहार से लेकर उनके जरूरतों की सिद्धि के लिए मारा जा रहा है। कभी उन्हें पालतू बनाने के लिए तो कभी उनसे मिलने वाले मांस और अन्य उत्पादों के लिए उन्हें पकड़ा या मारा जा रहा है। जो उनमें रहने वाले वायरसों के प्रसार के लिए आदर्श माहौल तैयार कर रहा है। यदि पिछले 100 वर्षों से जुड़े आंकड़ों को देखें तो औसतन हर साल करीब 2 वायरस अपने प्राकृतिक वातावरण से निकलकर इंसानों में फैल रहे हैं, लेकिन प्रकृति के विनाश की बढ़ती दर इनके फैलने के खतरे को भी और बढ़ा रही है। शोधकर्ताओं के अनुसार पिछले 50 वर्षों के आंकड़ों को देखें तो 4 प्रमुख जूनोटिक डिजीज ने इंसानों को बड़े पैमाने पर प्रभावित किया है। यह बीमारियां कोविड-19, इबोला, सार्स और एड्स हैं। इनमें से दो महामारियां तो जंगलों के विनाश और वन्यजीवों के व्यापार के कारण ही इंसानों में फैली हैं। यदि चमगादड़ों की बात करें तो उनमें कोरोना, सार्स और इबोला जैसे अनेकों वायरस होते हैं। आमतौर पर अंधेरे जंगलों में रहने वाले यह चमगादड़ महामारी नहीं फैलाते पर जिस तरह से इनके आवासों को नष्ट या प्रभावित किया गया है, उसके चलते यह वायरस इंसानों में फैले रहे हैं। शोधकर्ताओं की मानें तो इंसानों को प्रकृति के साथ अपने बिगड़ते रिश्तों को सुधारना होगा। इसकी शुरुआत उन उष्णकटिबंधीय वनों के विनाश को रोककर की जा सकती है, जहां मनुष्यों ने खेती या अन्य उद्देश्य के लिए 25 फीसदी से अधिक पेड़ों का सफाया कर दिया है। साथ ही अंतराष्ट्रीय स्तर पर जिस तरह से वन्यजीवों की तस्करी और शिकार किया जा रहा है उसे बंद करने की जरुरत है। चीन में जंगली मांस का व्यापार रोकना होगा। साथ ही दुनिया भर में जंगली और पालतू जानवरों में फैलने वाली बीमारियों की निगरानी और नियंत्रण के कार्यक्रमों में सुधार पर निवेश करना होगा। दुनिया के 21 जाने-माने संस्थानों से जुड़े वैज्ञानिकों, महामारी विज्ञानियों, अर्थशास्त्रियों, पारिस्थितिकीविदों और संरक्षण जीवविज्ञानियों द्वारा किए इस अध्ययन के मुताबिक कोविड-19 के कारण जो जीवन क्षति हुई है उससे जुड़ी वार्षिक हानि के केवल 5 फीसदी हिस्से से भविष्य में इन जूनोटिक महामारियों के जोखिम को आधा किया जा सकता है। इससे पहले जर्नल साइंस में प्रकाशित एक अन्य शोध में माना था कि कोविड-19 से हुए नुकसान का केवल 2 फीसदी हिस्सा भविष्य में महामारियों से सुरक्षित रख सकता है। शोध के मुताबिक अगले 10 वर्षों में वन्यजीवों और जंगलों की रक्षा के लिए किया गया 19.9 लाख करोड़ रुपए का निवेश भविष्य में कोरोनावायरस जैसी महामारियों से बचा सकता है। पर्यावरण संरक्षण और बीमारी की प्रारंभिक चरण में ही निगरानी से यह हासिल किया जा सकता है। जर्नल साइंस एडवांसेज में प्रकाशित इस शोध अनुमान है कि इस निवेश की मदद से हर साल इन जूनोटिक बीमारियों से होने वाली 16 लाख मौतों को टाला जा सकता है। साथ ही सालाना 746.6 लाख करोड़ रुपए के नुकसान को रोक सकता है। इस शोध में शोधकर्ताओं ने जिन तीन प्रमुख बातों पर गौर करने के लिए कहा हैं उनमें जंगलों के तेजी से होते विनाश को रोकना, वन्यजीवों के शिकार और व्यापार को बेहतर तरीके से नियंत्रित करना और वन्यजीवों में वायरस की वैश्विक निगरानी शामिल है। इससे न केवल महामारियों के खतरे को कम किया जा सकेगा साथ ही जलवायु परिवर्तन से निपटने और जैवविविधता को होते नुकसान को रोकने में भी मदद मिलेगी। इसके साथ ही शोध में पशु चिकित्सकों और वन्यजीव रोग जीव विज्ञानियों को प्रशिक्षित करने की बात भी कही है। साथ ही इन वायरस जीनोमिक्स के एक ग्लोबल डेटाबेस के निर्माण पर भी बल दिया है। जिससे नए उभरते रोगजनकों के स्रोत का उपयोग उनके प्रसार को धीमा करने या रोकने के लिए किया जा सके। इस शोध से जुड़े शोधकर्ता आरोन बर्नस्टीन के अनुसार महामारियां अब विकराल रूप लेती जा रही है वो पहले के मुकाबले कहीं ज्यादा हो गई हैं और अधिक महाद्वीपों को अपनी चपेट में ले रही हैं। ऐसे में इनकी रोकथाम इनके इजाज से कहीं ज्यादा सस्ती है।

केन -बेतवा नदी जोड़ो परियोजना का दिखेगा असर?

लखनऊ। तमाम किन्तु-परंतु और पर्यावरणीय सरोकारों को नजरअंदाज करते हुए अपनी तरह की देश की पहली नदी जोड़ो परियोजना को पहले दिसंबर 2021 में कैबिनेट ने आठ सालों के लिए क्रियान्वयन की स्वीकृति दी और अंतत- 2022-23 के आम बजट में आधिकारिक तौर पर मान्यता दे दी गई है। हालांकि सुप्रीम कोर्ट ने इसे अभी भी वन्य जीव स्वीकृति दिये जाने पर निर्णय नहीं लिया है।

इसके लिए पूर्व-शर्त के तौर पर भूमि का आबंटन किया जाना भी अभी मध्य प्रदेश द्वारा नहीं हुआ है। इस परियोजना के लिए बांध निर्माण से जो वन भूमि डूब में आएगी, उसकी क्षतिपूर्ति राजस्व भूमि द्वारा किया जाना जरूरी है। इसके लिए 60 वर्ग किलोमीटर की जरूरत है जिसकी व्यवस्था मध्य प्रदेश सरकार अभी तक नहीं कर पायी है। बावजूद इसके यह तय कर लिया गया है कि इसे किसी भी सूरत में अमल में लाना है। कुल 44 हजार करोड़ की इस परियोजना के लिए केंद्रीय बजट में मध्य प्रदेश सरकार को इसकी पहली किस्त 14 सौ करोड़ रुपए आबंटित करते हुए अपने इरादे पर मुहर लगा दी है। 14 सौ करोड़ की इस बड़ी राशि का इस्तेमाल कैबिनेट स्वीकृति के अनुसार आगामी 8 वर्षों में किया जाना है। 1 फरवरी 2022 को पेश किए गए इस बजट में बुंदेलखंड की इलाकाई राजनीति को नयी धार दे दी है, जो निर्विवाद रूप से भारतीय जनता पार्टी के पक्ष में है। इसे उत्तर प्रदेश चुनावों को ध्यान में रखकर देखे जाने की जरूरत है। इसका मुजाहिरा बजट पेश होने के अगले ही दिन यानी 2 फरवरी 2022 को प्रधानमंत्री की एक वर्चुअल रैली के जरिये किया गया। प्रधानमंत्री ने इस परियोजना के लिए आबंटित की गयी राशि का श्रेय लेते हुए इसे बुंदेलखंड की जीवन रेखा बताया और उत्तर प्रदेश की 52 विधानसभा सीटों में भाजपा को वोट देने की अपील की। चुनावों की घोषणा और बजट पेश होने के बीच एक द्वंद्व रहा है और ये सवाल चुनाव आयोग के समक्ष भी उठाए जाते रहे हैं कि अगर बजट में उत्तर प्रदेश के लिए कोई बड़ी घोषणाएँ या राशि का आबंटन होता है तो इसे चुनाव आचार संहिता के लिहाज से उचित नहीं माना जा सकता। इसके पीछे तर्क यह रहे हैं कि केंद्र में भाजपा की सरकार है और उत्तर प्रदेश में भी भाजपा सत्तारूढ दल होने के लिहाज से मुख्य दावेदार के रूप में चुनाव लड़ रही है। इस आशंका पर हालांकि चुनाव आयोग ने यह कहते हुए किनारा किया था कि बजट पेश करने की तारीख नियत है और एक नयी परंपरा के तौर पर यह 1 फरवरी को ही पेश किया जाता है। भाजपा ने संघीय मर्यादायों को अपने पक्ष में ढालने के लिए एक नया मुहावरा 'डबल इंजन सरकार' के रूप में गढ़ा है। हालांकि यह देश के संघीय ढांचे और चरित्र के खिलाफ खुला उद्घोष रहा है, लेकिन इसे व्यावहारिक रूप से लोग सही भी मानते हैं कि अगर दोनों ही निर्णायक स्थानों पर एक ही दल की सरकार होती है तो उसका लाभ प्रदेश को होता है। इसमें कितनी सच्चाई है और वास्तव में इसका लाभ उन राज्यों की जनता को मिला है या नहीं ठोस रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। बहरहाल। उत्तर प्रदेश के लिए अपेक्षाकृत अधिक लाभकारी इस परियोजना के लिए मध्य प्रदेश सरकार को आबंटित हुई इस बड़ी राशि को चुनाव आचार संहिता के मद्देनजर एक तरह से केंद्र सरकार की चतुराई के रूप में भी देखा जा रहा है। यहाँ यह बताना जरूरी है कि बुंदेलखंड एक भाषायी और सांस्कृतिक इलाका है। जो उत्तर-प्रदेश और मध्य प्रदेश के बीच एक साझा भौगोलिक क्षेत्र है, जिसे एक पृथक राज्य बनाने की राजनैतिक मांग जब-तब उठती रहती है। भाषाई और सांस्कृतिक रुप से जिस इलाके को बुंदेलखंड कहा जाता है उसमें उत्तर प्रदेश के पाँच जिले और मध्य प्रदेश के आठ जिले शामिल होते हैं। लेकिन अगर आबादी घनत्व के हिसाब से देखें तो मध्य प्रदेश के इन आठ जिलों की आबादी उत्तर प्रदेश के पाँच जिलों की कुल आबादी से लगभग आधा है। इस परियोजना में मध्य प्रदेश के पन्ना जिले की तबाही तय मानी जा रही है, जो केन नदी के ऊपरी हिस्से में है। इस परियोजना में पन्ना टाइगर रिजर्व का बड़ा हिस्सा डूब क्षेत्र में आएगा और ऐसा अनुमान लगाया जा रहा है कि कम से कम 20-25 लाख पुराने पेड़ इसकी भेंट चढ़ने वाले हैं। जिसका सीधा असर इस पूरे विंध्य पहाड़ी क्षेत्र पर पड़ना तय है।

साभार - डाउन टू अर्थ

जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए किस तरह हो भूमि उपयोग, वैज्ञानिकों ने दी सलाह

नई दिल्ली। एक नए अध्ययन में दुनिया भर के नीति निर्माताओं को भूमि उपयोग की चुनौतियों को दूर करने के लिए कार्रवाई का आह्वान किया है। इसमें भूमि उपयोग के स्थायी और न्यायसंगत समाधान विकसित करने को कहा गया है। अध्ययन में 20 देशों के 50 प्रमुख भूमि उपयोग के विशेषज्ञ वैज्ञानिकों द्वारा भूमि प्रणालियों के बारे में दस तथ्य सामने रखे हैं। अध्ययनकर्ताओं ने बताया कि यह अध्ययन नीति निर्माताओं और जनता को भूमि उपयोग के बारे में समझने में मदद करने के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत करेगा।

दुनिया भर के भूमि कार्यक्रम के कार्यकारी अधिकारी एरियन डी ब्रेमोंड ने कहा कि जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता और विकास पर वैश्विक समझौते भूमि प्रबंधन पर तेजी से ध्यान केंद्रित कर रहे हैं। सतत विकास लक्ष्यों को हासिल करने के लिए आज के दौर में निर्णय निर्माताओं के लिए यह समझना बहुत जरूरी है। लक्ष्यों को इस तरह से हासिल करना जो न्यायसंगत हो, ऐसी नीतियों की आवश्यकता होगी जो अध्ययन में बताए गए दस तथ्यों के लिए जिम्मेदार हों। अध्ययन का उद्देश्य जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को सीमित करने, टिकाऊ खाद्य और ऊर्जा उत्पादन के लिए प्रणाली बनाने। साथ ही जैव विविधता की रक्षा करने और भूमि स्वामियों के प्रतिस्पर्धी दावों को संतुलित करने जैसी चुनौतियों का समाधान करना है। यह नीति निर्माताओं के लिए जटिल चुनौतियों आर्थिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय रूप से स्थायी समाधान विकसित करने की उम्मीद है। प्रोफेसर डॉ नवीन रामनकुट्टी ने कहा, कार्बन को अवशोषित करने या प्रकृति संरक्षण क्षेत्रों को स्थापित करने के लिए कई नीतिगत परियोजनाएं, भूमि प्रणाली वैज्ञानिकों द्वारा अनदेखा किए जाते हैं। यह अध्ययन भूमि के संबंध में उन बुनियादी तथ्यों की एक चेकलिस्ट या सूची प्रस्तुत करता है जिन पर प्रभावी नीति निर्माण में विचार किया जाना है। रामनकुट्टी दुनिया भर के भूमि कार्यक्रम के सह-अध्यक्ष और ब्रिटिश कोलंबिया विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं। भूमि का मतलब है कि इसका महत्व सामाजिक रूप से निर्मित और विवादित न हों। भूमि को उपयोगी या सांस्कृतिक रूप से महत्वपूर्ण बनाने के लिए विभिन्न समूह अहमियत रखते हैं। नीतिगत हस्तक्षेप आमतौर पर किसी विशेष समस्या को हल करने के लिए होते हैं, लेकिन वे अक्सर तब विफल हो जाते हैं जब वे प्रणाली की जटिलता को अनदेखा किया जाता है।स्थायी परिवर्तन और निर्भरता भूमि प्रणालियों की सामान्य विशेषताएं हैं। भूमि का एक उपयोग से दूसरे उपयोग में परिवर्तित करना, जैसे कि पुराने जंगलों की सफाई, दशकों से सदियों बाद महसूस किए गए परिवर्तनों की ओर ले जाती है। बहाली शायद ही कभी जमीन को उस तरह वापस लाती है जो वास्तव में मूल स्थितियों से मेल खाती है। कुछ भूमि उपयोगों में छोटे बदलाव होते हैं लेकिन इनके बहुत बड़े प्रभाव होते हैं। उदाहरण के लिए, शहर बड़ी मात्रा में संसाधनों का उपभोग करते हैं जो अक्सर बड़ी मात्रा में भूमि का उपयोग करके कहीं और उत्पादित किए जाते हैं। अपेक्षाकृत छोटे भूमि बदलाव कर मानव आबादी को केंद्रित करके खराब प्रभावों को भी कम कर सकते हैं। कुल प्रभावों को मापना और उनका पूर्वानुमान लगाना कठिन हो सकता है। भूमि-उपयोग में बदलाव करने वाले कारण और प्रभाव विश्व स्तर पर परस्पर जुड़े हुए होते हैं और वे दूर-दूर तक फैले होते हैं। भूमंडलीकरण के कारण, भूमि उपयोग, आर्थिक ताकतों, नीतियों या संगठनों और निर्णयों से प्रभावित हो सकता है। लोग पृथ्वी की तीन-चौथाई से अधिक भूमि में सीधे निवास, उपयोग या प्रबंधन करते हैं, जिसमें 25 फीसदी से अधिक स्वदेशी लोग और स्थानीय समुदाय (आईपीएलसी) द्वारा उपयोग किए जाते हैं। यहां तक कि निर्जन भूमि भी अलग-अलग तरीकों से लोगों से जुड़ी हुई है। भूमि-उपयोग में बदलाव आमतौर पर विभिन्न फायदों के लिए अलग-अलग होता है। जबकि भूमि उपयोग भोजन, लकड़ी और पवित्र स्थानों जैसे कई प्रकार के लाभ प्रदान करता है, इसमें अक्सर प्रकृति और लोगों के कुछ समुदायों दोनों के लिए अलग-अलग होते हैं। भूमि उपयोग के निर्णयों में महत्व के निर्णय भी शामिल होते हैं ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि किन फायदों को प्राथमिकता दी जाए। भूमि-उपयोग के दावे अक्सर अस्पष्ट, अतिव्यापी और विवादित होते हैं। भूमि के उपयोग के अधिकार आपस में समाहित हो सकते हैं, ये अलग-अलग लोगों से संबंधित हो सकते हैं। भूमि से लाभ और बोझ असमान रूप से वितरित किए जाते हैं। दुनिया भर के अधिकांश देशों में बहुत कम लोगों के पास भूमि और भूमि की अनुपातहीन मात्रा है। भूमि उपयोगकर्ताओं के पास कई, कभी-कभी परस्पर विरोधी, विचार होते हैं। भूमि उपयोग को लेकर सामाजिक और पर्यावरणीय न्याय क्या होता है। न्याय का कोई एक रूप नहीं है जो सभी के लिए उचित हो। न्याय का अर्थ अलग-अलग लोगों के लिए अलग-अलग है, भूमि के लिए स्वदेशी समूहों के दावे को पहचानने से लेकर आने वाली पीढ़ियों पर प्रभाव तक, यह निर्धारित करने के लिए कि किसके दावों को प्राथमिकता दी जाती है। उपरोक्त तथ्य जलवायु परिवर्तन को कम करने और अनुकूलन से लेकर खाद्य उपलब्धता, जैव विविधता और मानव स्वास्थ्य तक, भूमि से संबंधित नीतियों और निर्णयों की प्रभावशीलता, सामाजिक और पर्यावरणीय प्रभावों को आकार देते हैं। यह अध्ययन नीति निर्माताओं के लिए भूमि उपयोग से प्रभावित चुनौतियों से निपटने का समाधान प्रदान करता है। भूमि अधिकारों और स्वामित्व और विकासशील प्रणालियों के अस्पष्ट और अतिव्यापी दावों को स्वीकार करके भूमि उपयोग में सुधार किया जा सकता है। सुधार हाशिए के समूहों के अधिकारों और दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हैं। सह-अध्ययनकर्ता और पारिस्थितिक तंत्र सेवाओं में रीडर केसी रयान ने कहा हम अपनी भूमि का उपयोग कैसे करते हैं? यह निर्धारित करेगा कि क्या मानवता जलवायु परिवर्तन से निपटने, जैव विविधता के नुकसान को रोकने और सभी के लिए अच्छी आजीविका प्रदान करने की चुनौती का सामना कर सकती है। यह काम दशकों के काम को एक साथ लाता है यह दिखाने के लिए कि स्थिरता के लिए भूमि का प्रबंधन करना इतना कठिन क्यों है, लेकिन यह भी दिखाता है कि यह कैसे किया जा सकता है। यह अध्ययन 'प्रोसीडिंग्स ऑफ द नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज (पीएनएएस)' में प्रकाशित हुआ है।

2021 में बेचे गए 44 लाख से ज्यादा बैटरी इलेक्ट्रिक व्हीकल, 121 फीसदी का इजाफा

नई दिल्ली। दुनिया भर में 2021 के दौरान 43.9 लाख से ज्यादा बैटरी इलेक्ट्रिक व्हीकल (बीईवी) बेचे गए थे। जोकि पिछले वर्ष की तुलना में121 फीसदी ज्यादा हैं। गौरतलब है कि इसकी तुलना में 2020 में केवल 19.8 लाख बीईवी वाहनों की बिक्री हुई थी। यह जानकारी हाल ही में पीडब्ल्यूसी द्वारा इलेक्ट्रिक व्हीकल के बिक्री को लेकर जारी नई रिपोर्ट 'इलेक्ट्रिक व्हीकल सेल्स रिव्यु 2021' में सामने आई है। दुनिया भर में जैसे-जैसे वायु प्रदूषण का स्तर बढ़ रहा है उसे देखते हुए इलेक्ट्रिक व्हीकल का चलन भी बढ़ रहा है। यह वजह है कि दुनिया के कई देश इसे बढ़ावा देने के लिए तरह-तरह के स्कीम भी चला रहे हैं। रिपोर्ट की मानें तो दुनिया भर में चीन इन बैटरी इलेक्ट्रिक वाहनों (बीईवी) का सबसे बड़ा बाजार है। जहां 2021 में 29 लाख बैटरी इलेक्ट्रिक वाहनों की बिक्री हुई थी, जोकि 2020 की तुलना में करीब 172 फीसदी ज्यादा है। ऐसा नहीं है कि केवल चीन में ही बीईवी की बिक्री में वृद्धि देखी गई थी, यूरोप के भी प्रमुख बाजारों में भी इस दौरान पर्याप्त वृद्धि दर्ज की गई थी। 2021 के दौरान जहां जर्मनी में नए बीईवी के पंजीकरण में 83 फीसदी की वृद्धि दर्ज की गई थी, वहीं यूके में यह वृद्धि 76 फीसदी की थी।इसी तरह अमेरिका में जो बैटरी इलेक्ट्रिक वाहनों का बाजार पहले सुस्त था उसमें भी नया उत्साह देखा गया है। जहां कुछ चुनिंदा मॉडलों की वजह से पिछले वर्ष की तुलना में बीईवी की बिक्री में 62 फीसदी की वृद्धि हुई है। गौरतलब है कि अमेरिका में बाइडन प्रशासन इस दिशा में कई सार्थक कदम उठाए हैं जिनमें बीईवी चार्जिंग स्टेशन कार्यक्रम भी शामिल है। इसके लिए 56,087 करोड़ रुपए आबंटित किए गए हैं। गौरतलब है कि अमेरिका में बाइडन प्रशासन इस दिशा में कई सार्थक कदम उठाए हैं जिनमें बीईवी चार्जिंग स्टेशन कार्यक्रम भी शामिल है। इसके लिए 56,087 करोड़ रुपए आबंटित किए गए हैं। इसी तरह जर्मनी भी अपने देश में बीईवी चार्जिंग के इंफ्रास्ट्रक्चर में सुधार करने की योजना बना रहा है, जिसके तहत 2024 तक 47,025 करोड़ रुपए का निवेश करने की योजना है। देखा जाए तो जर्मनी में अब 50 हजार से ज्यादा पंजीकृत चार्जिंग पॉइंट हैं, जिनकी संख्या 2021 में 11,600 थी।

एयर क्वालिटी ट्रैकर- शिलांग में हवा रही सबसे ज्यादा साफ, 36 दर्ज किया गया वायु गुणवत्ता सूचकांक

शिलांग 09 फरवरी 2022 को देश के 153 शहरों के लिए जारी वायु गुणवत्ता सूचकांक के अनुसार मुजफ्फरनगर में हवा की गुणवत्ता बेहद खराबश्रेणी की थी, जहां वायु गुणवत्ता सूचकांक 385 दर्ज किया गया था। यदि दिल्ली की बात करें तो वहां वायु गुणवत्ता सूचकांक 270 दर्ज किया गया था जोकि वायु गुणवत्ता के खराब श्रेणी को दर्शाता है। वहीं देश के अन्य प्रमुख शहरों से जुड़े आंकड़ों को देखें तो मुंबई में वायु गुणवत्ता सूचकांक 116 दर्ज किया गया था, जो प्रदूषण के मध्यम स्तर को दर्शाता है। जबकि कोलकाता में यह इंडेक्स 144, चेन्नई में 83, बैंगलोर में 100, हैदराबाद में 128, अहमदाबाद में 130 और पुणे में 166 दर्ज किया गया था।

यदि देश में सबसे यादा प्रदूषित शहरों की बात करें तो मुजफ्फरनगर में वायु गुणवत्ता का स्तर 385 मापा गया था, जबकि किशनगंज में 331, मेरठ में 327, मुंगेर में 338, मुजफ्फरपुर में 310, सहरसा में 316 और सोनीपत में 366 दर्ज किया गया था। इन शहरों में वायु गुणवत्ता सूचकांक 301 से 400 की बीच दर्ज की गई थी। वहीं इसके विपरीत मैहर में हवा सबसे यादा साफ थी जहां वायु गुणवत्ता सूचकांक 25 रिकॉर्ड किया गया था।इसी तरह छपरा सहित देश के 33 शहरों में वायु गुणवत्ता खराब श्रेणी की थी, जहां वायु गुणवत्ता सूचकांक 201 से 300 के बीच था। इसमें दिल्ली, धारूहेड़ा, दुर्गापुरी, फरीदाबाद, गाजियाबाद, गुरुग्राम, हापुड़, हिसार, हावड़ा, कटिहार, कटनी, कुरुक्षेत्र, मानेसार, मोतिहारी, नोएडा, पटना, पूर्णिया, राजगीर, सिंगरौली और उजैन आदि शहर शामिल थे। वहीं देश के 69 शहरों में वायु गुणवत्ता मध्यम श्रेणी की थी इन शहरों में वायु गुणवत्ता सूचकांक 101 से 200 के बीच था। इनमें आगरा, अहमदाबाद, अलवर, अंबाला, अमृतसर, आरा, आसनसोल, औरंगाबाद, भिवाड़ी, भोपाल, बीदर, बिहार शरीफ, चंडीगढ़, चंद्रपुर, दावनगेरे, देवास, फिरोजाबाद, गांधीनगर, गया, ग्रेटर नोएडा, गुवाहाटी, ग्वालियर, हल्दिया, हैदराबाद, इंदौर, जबलपुर, जयपुर, जालंधर, झांसी, जींद, जोधपुर, कैथल, कलबुर्गिक, कल्याण, कानपुर, करनाल, खन्ना, कोलकाता, कोझम, कोटा और लखनऊ आदि शामिल थे। इसके बाद देश के 37 शहरों में हवा की गुणवत्ता संतोषजनक दर्ज की गई थी। जिसमें हसन, कन्नूर, कोचि, कोहिमा, कोलार, कोप्पल, कोझिकोड, मदिकेरी, मैंगलोर, मैसूर, नंदेसरी, पुदुचेरी, रामनगर, सागर, सतना, शिवमोगा, सिल्लीगुड़ी, तिरुवनंतपुरम, तिरुपति, वृंदावन और यादगिर आदि शहर शामिल थे, इन शहरों में वायु गुणवत्ता 51 से 100 के बीच दर्ज की गई थी। यदि देश में साफ सुथरी हवा की बात की जाए तो देश में केवल 7 शहरों में वायु गुणवत्ता का स्तर बेहतर श्रेणी का था। इनमें आइजोल, बागलकोट, चामराजनगर,

गुम्मीडिपुंडी, मैहर, थूथुकुड़ी और विजयपुरा शहर शामिल थे, जहां वायु गुणवत्ता सूचकांक 0 से 50 के बीच दर्ज किया गया था। देश में वायु प्रदूषण के स्तर और वायु गुणवत्ता की स्थिति को आप इस सूचकांक से समझ सकते हैं जिसके अनुसार यदि हवा साफ है तो उसे इंडेक्स में 0 से 50 के बीच दर्शाया जाता है। इसके बाद वायु गुणवत्ता के संतोषजनक होने की स्थिति तब होती है जब सूचकांक 51 से 100 के बीच होती है। इसी तरह 101-200 का मतलब है कि वायु प्रदूषण का स्तर माध्यम श्रेणी का है, जबकि 201से 300 की बीच की स्थिति वायु गुणवत्ता की खराब स्थिति को दर्शाती है। वहीं यदि सूचकांक 301 से 400 के बीच दर्ज किया जाता है जैसा दिल्ली में अक्सर होता है तो वायु गुणवत्ता को बेहद खराब की श्रेणी में रखा जाता है। यह वो स्थिति है जब वायु प्रदूषण का यह स्तर स्वास्थ्य को गंभीर और लम्बे समय के लिए नुकसान पहुंचा सकता है। इसके बाद 401 से 500 की केटेगरी आती है जिसमें वायु गुणवत्ता की स्थिति गंभीर बन जाती है। ऐसी स्थिति होने पर वायु गुणवत्ता इतनी खराब हो जाती है कि वो स्वस्थ इंसान को भी नुकसान पहुंचा सकती है, जबकि पहले से ही बीमारियों से जूझ रहे लोगों के लिए तो यह जानलेवा हो सकती है।

चिंताजनक हालात, 11 फीसदी समुद्री जीवों के शरीर में पाया गया प्लास्टिक

न्यूयार्क। समुद्र में प्लास्टिक प्रदूषण चिंताजनक स्तर पर पहुंच रहा है और यह आगे भी बढ़ता रहेगा। भले ही इस तरह के कचरे को दुनिया के महासागरों तक पहुंचने से रोकने के लिए महत्वपूर्ण कदम ही क्यों न उठाए जाएं।

समुद्री प्रजातियां, जैव विविधता और पारिस्थितिकी प्रणालियों पर महासागरों में प्लास्टिक प्रदूषण के प्रभाव नामक अध्ययन प्रकाशित हुआ है। सह-अध्ययनकर्ता और जीव विज्ञानी मेलानी बर्गमैन ने कहा हमने प्लास्टिक को समुद्र की सतह पर और आर्कटिक समुद्री बर्फ में सबसे गहरी समुद्री खाइयों में देखा है। अध्ययन के मुताबिक अब तक उत्पादित सभी प्लास्टिक का लगभग 75 फीसदी बेकार हो गया है। अध्ययन में कहा गया है कि प्लास्टिक उत्पादन, उपयोग और निपटान कुल ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन बजट का 10 से 20 फीसदी हो सकता है। अध्ययनकर्ताओं ने बताया कि महासागरीय प्लास्टिक का 80 फीसदी भूमि आधारित स्रोतों से आया है। नदी के डेल्टा में 52 फीसदी प्लास्टिक प्रदूषण नदियों द्वारा यहां तक पहुंचता है। अध्ययन के मुताबिक समुद्री बर्फ में प्लास्टिक का समावेश ग्लोबल वार्मिंग को बढ़ाने के लिए जिम्मेवार है। समुद्री जीवों के माइक्रोप्लास्टिक के सेवन से आंतों में रुकावट या घाव बन सकते है और उनके खाने की मात्रा भी कम हो रही है। प्लास्टिक के कारण हजारों स्ट्रॉबेरी हर्मिट केकड़े कंटेनरों में फंस जाते हैं और हर साल हेंडरसन द्वीप पर मर जाते हैं। अध्ययन के मुताबिक 6,561 जांचे गए जलीय जीवों में से 11 फीसदी ने समुद्री प्लास्टिक के मलबे को निगल लिया था।

समुद्री खाद्य वेब में पॉलीक्लोराइनेटेड बाइफिनाइल (पीसीबी) की बढ़ती मात्रा एक स्पष्ट चेतावनी है। लगातार कार्बनिक प्रदूषकों का निरंतर उपयोग समुद्री जीवन को खतरे में डालता है। जबकि प्लास्टिक से निकलने वाले विभिन्न रसायन पहले ही जलीय जानवरों के लिए जहरीला है। कुछ क्षेत्रों - जैसे भूमध्यसागरीय, पूर्वी चीन और पीले समुद्र में पहले से ही प्लास्टिक खतरनाक स्तर तक बढ़ गया हैं। जबकि अन्य भाग भविष्य में तेजी से प्रदूषित होने के खतरे में हैं। अध्ययनकर्ताओं ने निष्कर्ष निकाला कि समुद्र में लगभग हर प्रजाति प्लास्टिक प्रदूषण से प्रभावित हुई है और यह महत्वपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र जैसे कोरल रीफ और मैंग्रोव को नुकसान पहुंचा रहा है। जैसे-जैसे प्लास्टिक छोटे-छोटे टुकड़ों में टूटता जाता है, यह समुद्री खाद्य श्रृंखला में भी प्रवेश करता है, व्हेल से लेकर कछुओं, छोटे प्लवक तक हर जीव द्वारा निगला जा रहा है। बर्गमैन ने कहा उस प्लास्टिक को फिर से पानी से बाहर निकालना लगभग असंभव है, इसलिए नीति निर्माताओं को इसे पहले स्थान पर महासागरों में प्रवेश करने से रोकने पर ध्यान देना चाहिए। उन्होंने कहा कुछ अध्ययनों से पता चला है कि अगर आज भी ऐसा होता है, तो समुद्री माइक्रोप्लास्टिक की मात्रा दशकों तक बढ़ती रहेगी। मैकलियोड ने कहा कि दुनिया भर में प्लास्टिक से पड़ने वाले बुरे प्रभावों पर तत्काल उपाय करने और लगाम लगाने की आवश्यकता है। वर्ल्ड वाइड फंड (डब्ल्यूडब्ल्यूएफ) के ह्वाइक वेस्पर ने कहा कि जहां उपभोक्ता अपने व्यवहार में बदलाव करके प्लास्टिक प्रदूषण को कम करने में मदद कर सकते हैं। वहीं सरकारों को इस समस्या से निपटने के लिए कदम बढ़ाना होगा। उन्होंने कहा हमें प्लास्टिक पर रोक लगाने की एक अच्छी नीतिगत रूपरेखा की आवश्यकता है, यह एक वैश्विक समस्या है और इसे वैश्विक समाधान की आवश्यकता है।

साभार - डाउन टू अर्थ

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक सोनल मेहता केलिए प्रतीक्षा ग्राफिक्स, 127 देवी अहिल्या मार्ग, इंदौर (म.प्र.) से मुद्रित एवं 209-बी शहनाई रेसीडेंसी-2 कनाड़िया रोड इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: डॉ. सोनल मेहता फोन : 0731-2595008 Mail.sonal12mehta@yahoo.co.in 9755040008